नवम्बर 2022

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

हम तो ज्ञानी हो बैठे हैं इसलिए हीराबा की मृत्यु हुई थी तब लोग मेरे सामने देख रहे थे न,
कि दादा कितने ज्ञान में हैं और कितने इसमें हैं! परंतु एक क्षण के लिए वे अन्य कुछ नहीं देख सकते थे,
निरंतर ज्ञान ही। पल-पल नहीं, समय-समय पर। समयसार का ज्ञान रहा था।

पूज्यश्री दिपकभाई का ऑस्ट्रेलिया-सिंगापोर का सत्संग प्रवास

पर्थ : सत्संग-ज्ञानविधि : ता. 9 से 11 सितम्बर 2022

सिडनी : सत्संग-ज्ञानविधि-शिविर : ता. 13 से 18 सितम्बर 2022

सिंगापोर : सत्संग-ज्ञानविधि : ता. 22 से 24 सितम्बर 2022

दादावाणी

स्वजनों की मृत्यु के समय दादाश्री की ज्ञानदशा

वर्ष : 18 अंक : 1
अखंड क्रमांक : 205
नवम्बर 2022
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2022
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम
से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

संपादकीय

इस जगत् में संयोग और आत्मा दो ही हैं। निरंतर परिवर्तनशील जगत् में बदलाव होते ही रहते हैं, क्योंकि संयोग वे वियोगी स्वभाव के हैं। इस देह का जन्म हुआ वह भी एक संयोग है और उसका वियोग अवश्य है ही। हम सभी जानते हैं कि ये जन्म-मृत्यु देह के हैं, आत्मा के नहीं हैं, उसके बावजूद भी स्वजनों की मृत्यु के संयोग में सहज ही भय उत्पन्न हो जाता है। उसी तरह परम पूज्य दादाश्री को भी जीवन में मृत्यु के सामने भय उत्पन्न हुए थे, परंतु उनकी विशेषता यह थी कि वे भय के सामने खुद की विचक्षण दृष्टि से उसका निरीक्षण करके मूल (जड़) में से उसके कारणों को ढूँढकर उसका सार निकालते थे।

प्रस्तुत अंक में, परम पूज्य दादाश्री के जीवन में उनके नज़दीकी रिश्तेदार, जैसे कि माता-पिता, बड़े भाई, बच्चे और पत्नी वगैरह की मृत्यु के समय उत्पन्न हुए भय और उस समय उनकी आंतरिक मनोस्थिति का वर्णन और साथ ही उनकी विचारधारा का विवरण संक्षेप में मिलेगा। जिसकी ख़ूबी यह है कि दादाश्री के जीवन में भी रिश्तेदारों की मृत्यु के अवसर तो आए थे लेकिन वे खुद ज्ञान से पहले साक्षीभाव में और ज्ञान के बाद ज्ञाता-द्रष्टा भाव में रहकर सूक्ष्म से सूक्ष्म जो विचार आएँ उन्हें देखकर, उनके सामने दूसरा विरोधी ज्ञान लगाकर असरमुक्त रह पाए थे।

मृत्यु समय के अवसरों में ज्ञान से पहले और ज्ञान के बाद उनके आदर्श व्यवहार के साथ ही उनकी ज्ञानदशा का वर्णन हर एक अवसरों में, उनके अपने ही शब्दों में मिलता है, जैसे कि, ये सभी रिलेटिव सगाई हैं, रियल सगाई नहीं हैं। जलने की चीज़ जल गई, नहीं जलने की रह गई। जो हमेशा के हैं, वे तो कहीं गए ही नहीं न! वे तो हमारे साथ ही हैं। जिनके साथ हिसाब थे, वे चुकता करके चले गए अपने घर। यह देह अपना नहीं होता, तो भला देह का बेटा वह किस तरह अपना होता होगा? मनुष्य के मर जाने के बाद स्वार्थ के लिए रोते हैं! हस्ताक्षर करने के बाद ही मृत्यु आती है। नियमराज है, यमराज नहीं है इस जगत् में! भगवान की दृष्टि में कोई जीता-मरता ही नहीं है।

इस दादावाणी के संकलन का खास प्रयोजन यह है कि वर्तमान परिस्थिति में, जीवन में हर कदम पर हम सभी ने बहुत से स्वजनों को अकाल मृत्यु में खो दिया है। जिसके गहरे आघात (सदमें) से लोगों के मन व्याकुल हैं, मानो रोज़मर्रा के जीवन का वेग रुक गया हो। इस ज्ञान के बाद महात्माओं को ख्याल में रहता है कि किसी का आयुष्यकर्म रोका जा सके ऐसा नहीं है। जो हो रहा है वह व्यवस्थित है लेकिन फिर भी मृत्यु का यह दु:ख मन को झकझोर जाता है।

यह ज्ञान मिलने के बाद महात्माओं को कभी न कभी जीवन-मृत्यु के भय का सॉल्यूशन तो लाना ही पड़ेगा न? ये जन्म-मृत्यु इगोइज़म के हैं, आत्मा के नहीं है, आत्मा तो परमानेन्ट है। यह ज्ञान ऐसा है कि जब मृत्यु का पल आए तब वह खुद की शुद्धात्मा की गुफा में बैठकर मृत्यु के सामने असरमुक्त रह सके। यही ज्ञान उस समय महात्माओं को अनुभव के रूप में वर्तन में आए, यही हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

- जय सच्चिदानंद

स्वजनों की मृत्यु के समय दादाश्री की ज्ञानदशा

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

मृत्यु का भय था बचपन में

प्रश्नकर्ता : दादाजी, बचपन में आपको डर लगता था?

दादाश्री : बचपन में तो सभी डरते हैं, मैं भी डरता था।

मैं तो जब छोटा था तब मुझे मृत्यु का भय लगता था। जो जन्में हैं वे मरेंगे ही। मैं काँप जाता था और बचपन से ही ऐसा लगता था कि यह सब हमें नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किसी की मृत्यु देखी थी?

दादाश्री : मैंने कम उम्र में मृत्यु देखी थी। एक बार शादी में बंदूकची से बंदूक चलाने में गलती हो गई और वह मर गया। वहाँ पर बेहिसाब खून था! हम तो उस समय दस-बारह साल के थे, तो घबरा गए तो अभी तक वह घबराहट रहती थी, ज्ञान होने से पहले तक। क्योंकि ऐसा सब देखा ही नहीं था न!

नियमराज से भय नहीं लगता

मैं जब छोटा था, उन दिनों गाँव में क्या चलता था कि ऊपर यमराज है। जब इंसान की मृत्यु का समय आता है तब यमराज लेने आते हैं, सभी जीवों को। छोटे बच्चे को यमराज से भय लगता है। हर इंसान को भय रहता है यमराज का। तब मैं भी इसे सच मानता था। मन में डर लगता था इसलिए फिर मैं खोज करता था। जिसे घबराहट ही नहीं हो वह खोज कैसे करेगा? अब भय निकले किस तरह से? जब तक इस ज्ञान के सामने दूसरा कोई ज्ञान नहीं आए तब तक यह भय नहीं निकल सकता। जिस ज्ञान से भय हुआ जब तक उसका विरोधी ज्ञान न हो तब तक भय नहीं निकलता।

फिर इसके बारे में बहुत सोचते-सोचते अंत तक विचार उलझे हुए ही रहे। इस तरह उम्र बढ़ती गई, और इस तरह सोचते-सोचते ऐसा लगा कि यमराज नाम का कोई जीव था ही नहीं। बहुत ही मंथन करने लगे इसलिए अंदर उस तरफ की श्रद्धा खत्म हो गई, यमराज नाम की। यानी कि उसी दिन से मुझ में ऐसे विचार जागे थे।

अंत में पच्चीस साल की उम्र में मैंने ढूँढ निकाला कि यमराज नाम का जीव है ही नहीं। जाँच किया तब यह सब गप्प निकली। तो खोज करने के बाद ही इसे छोड़ा। यमराज नाम का कोई देव है ही नहीं, यह सब बोगस ही है, बात ही गलत है बिल्कुल। सौ प्रतिशत गलत बात है, एक प्रतिशत भी सही नहीं है।

मनुष्य नियम से मरता है। नियमराज ले जाते हैं। उसमें क्या भयभीत होने जैसी कोई चीज़ है? नियम से जन्म लेते हैं और नियम से मरते हैं और व्यवस्थित के ताबे में हैं। अब क्या नियमराज को तनख्वाह देनी पड़ेगी? नियम से सुबह होती है, नियम से रात होती है। नियमराज आपको समझ में आया? नियम ही ले जाता है।

इस नियम के अधीन ही यह संसार है। जमरा के अधीन नहीं है। यमराज के अधीन नहीं है।

ज्ञान से पहले मृत्यु की असरें...

प्रश्नकर्ता : दादा, आप पर किसी के मृत्यु का ऐसा कुछ असर हुआ था?

दादाश्री : 1956 में हुआ था, ज्ञान होने से पहले हमारी मदर की मृत्यु हो गई थी। उस दिन रोना आया था।

प्रश्नकर्ता : तो वह जो आप पर असर हो गया, रोना आ गया, उस समय आप कहाँ थे?

दादाश्री : कहाँ?

प्रश्नकर्ता : आप जो द्रष्टा भाव में...

दादाश्री : नहीं! उस समय द्रष्टा भाव नहीं था। उस समय तो 'मैं अंबालाल ही हूँ', वही था। उसके दो साल बाद यह ज्ञान हुआ।

तटस्थता से निरीक्षण किया माँ का स्वभाव

प्रश्नकर्ता : झवेरबा (माँ) का देहांत कब हुआ था?

दादाश्री : 1956 में। मैं अड़तालीस साल का हुआ तब तक वे थे।

प्रश्नकर्ता : यानी कि बा के जाने के बाद ज्ञान हुआ?

दादाश्री : बा के जाने के दो साल बाद ज्ञान हुआ। बा तो कहना पड़ेगा... मूर्ति थीं!

तब मेरी मदर की उम्र चौरासी साल थी। रोज़ ऐसा कहती थीं कि 'जब तक मुझे आँखों से दिखाई देता है, तब तक मुझे कोई हर्ज नहीं है'। थोड़ा खा सकती थीं, चल-फिर नहीं सकती थीं, तो फिर मैं उनके पास बैठे-बैठे क्या करता था? रोज़ सहजात्म स्वरूप का मंत्र बुलवाता रहता था। मैं बुलवाता था तो वे बोलती थीं। मुझे ज्ञान नहीं हुआ था उस समय। यों तो उनके मन में ऐसी इच्छा थी कि 'अभी तो मेरी आँखें अच्छी हैं तो मुझे कोई हर्ज नहीं है'। एक बार मैंने पूछा था, 'बा, अब जाना है?' तब कहा 'नहीं, शरीर अच्छा है, मेरी आँखें-वाँखें अच्छी हैं।' तो मैं समझ गया कि अंदर से इनकी जाने की नीयत नहीं है। 'मुझे यह रास आ गया है' कहते हैं। चौरासी साल हो गए थे, इतने पूरे किए फिर भी अभी यह 'रास आ गया है' कि छूटता नहीं है।

अब मुझे तो मातृप्रेम रहेगा ही न? मातृभक्ति रहेगी न? लेकिन किसलिए? मैं तटस्थ रूप से देखता था कि 'ओहोहो! मनुष्यों के स्वभाव कैसे होते हैं! कितने बड़े, महान! इतने बड़े नोबल माइन्ड वाले थे, फिर भी कहते हैं कि 'अभी तो मेरी आँखें अच्छी हैं न!' तब मैंने सोचा 'नीयत है इनकी जीने की'।

खोज दादा की, 'आज माँ ने हस्ताक्षर कर दिए!'

मैं तो रोज़ खोज करता रहता था। हर बात में खोज करता था। हमारे वहाँ मामा के बेटे रावजीभाई आए हुए थे। वे उम्र में मुझसे चार-पाँच साल छोटे थे। एक दिन मैं और रावजीभाई, हम दोनों साथ में बाहर सो रहे थे।

रात के बारह बज चुके थे तो हम तो सो गए थे। रात के बारह-एक बजे होंगे और हमारी बा के पेट में दर्द हुआ होगा तब वे धीरे से बोलने लगीं, अंदर। तो रात को एक बजे मैं जाग उठा। तब अंदर वे बोल रही थीं, 'हे भगवान अब तो उठा ले मुझे। अब छूट जाए तो अच्छा है! अब छोड़।' तब मैंने साथ में सो रहे रावजीभाई को जगाया। मैंने उन्हें हिलाकर जगाया। मैंने कहा, 'देखो, बा ने हस्ताक्षर कर दिए! मैं रोज़ कहता हूँ हस्ताक्षर, तो आज हस्ताक्षर कर दिए, सुनना।'

तब बा फिर से बोले, 'हे भगवान! उठा

ले'। दो बार बोले। दूसरी बार में उन्होंने सुन लिया। मुझसे कहा, 'क्यों ऐसा कहा? ऐसा क्यों कहा? मैंने कहा, 'कोई दुःख हो तभी कोई कहेगा न!' क्योंकि अंदर जो दुःख होता है वह सहन नहीं हो पाता तब इंसान ऐसा भाव कर लेता है कि 'अरे, छूट जाएँ तो अच्छा।' तो वे हस्ताक्षर कर देते हैं। देखो न, बा ने हस्ताक्षर कर दिए।

हस्ताक्षर होने के बाद ही आती है मृत्यु

इस प्रकार से (कुदरत) हस्ताक्षर करवा लेती है। अंदर ऐसी मार लगाती है कि हम से हस्ताक्षर करवा लेती है। हस्ताक्षर किए बिना जा ही नहीं सकते। वास्तव में आपके मालिक कौन हैं? आपका *ऊपरी* (बॉस) कोई नहीं है। क्या इन्कम टैक्स के लिए सिग्नेचर नहीं लेते? सभी के लिए सिग्नेचर लेते हैं। यहाँ पर परदेश में आना-जाना हो तो पासपोर्ट में भी हस्ताक्षर की ज़रूरत पड़ती है। जन्म होते समय भी हस्ताक्षर नहीं किए जाए तो जन्म ही नहीं हो सकता, तो यह क्या किसी के बाप का है कि कोई हमें ले जा सके वहाँ पर? नियमराज तो नियम है, वह चीज़ अपने हस्ताक्षर से तो हल्की ही है। हमारे हस्ताक्षर होंगे तभी नियमराज आएँगे। यह यमराज नहीं है, नियमराज है। यमराज नहीं है। अपने हस्ताक्षर के बिना कैसे जा सकते हैं? आपको समझ में आई यह बात!

यह सारा तो मैं अपने अनुभव के सार पर से लाया हूँ। मेरा तो काम ही यही था।

जब मदर (माँ) अंतिम स्थिति में थीं तब...

हमारी बा थीं न, चौरासी साल की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई। यों तो उस समय बा की तबियत बहुत अच्छी थीं। हमारी बा का जब अंतिम समय था तब वे बिस्तर पर ही थीं, तब मृत्यु के दो घंटे पहले पूछा कि 'कौन-कौन बैठे हैं?' उन्होंने आँखें खोलीं और सभी तरफ देखा कि कौन-कौन है! हमारी मामी थीं और उनका बेटा था। मैंने कहा कि 'ये जेरामभाई।' तो कहा 'हाँ, हाँ बैठो'। और दो घंटे बाद तो अंदर से चलने की तैयारी कर ली। उसके बाद फिर उनकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी, तब मैं जान गया कि तैयारी कर ली है। अब ये जा रही हैं। तब मैंने सब से कहा 'आज की तैयारी है'।

फिर मैंने कहा, 'आप अपनी विधि करना, नवकार मंत्र बोलना और मैं अपनी विधि करता हूँ'। हीराबा को उनके सामने बैठाया और सभी विधियाँ करने लगा। मैंने डेढ़-दो घंटे तक विधियाँ कीं। और बा विधियाँ खत्म होने पर गईं।

फादर (पिताश्री) के देहविलय से ऋणानुबंध खत्म हुए

प्रश्नकर्ता : मूलजीभाई किस उम्र में गए?

दादाश्री : पचास-इक्यावन साल की।

प्रश्नकर्ता : ऐसा? बहुत कम उम्र में चले गए!

दादाश्री : कम उम्र में लेकिन उन दिनों तो इक्यावन साल तक जीना भी बहुत कहा जाता था।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए तो बहुत खुशी मनाते थे लोग, वन मनाया, ऐसा करके मनाते थे।

दादाश्री : इक्यावन-वन में आया, कहते थे।

प्रश्नकर्ता : (विक्रम संवत) 1983 साल में मूलजीभाई गुज़र गए थे। 1983 यानी कि आज साठ साल हुए (संवत 2043, ई.स. 1987)।

दादाश्री : हाँ, 1983 की बाढ़ के समय।

प्रश्नकर्ता : 1983 में बाढ़ आई थी, यानी साठ साल हो गए। तो जब आपके फादर गए तब आपकी उम्र कितनी थी?

दादाश्री : बीस साल का था तब फादर गुज़र गए थे। क्या हुआ कि हमारे फादर की तबियत अच्छी नहीं थी, तब मैं यहाँ कॉन्ट्रैक्ट के काम पर जाता था। इसलिए हमारे बड़े भाई मणिभाई ने मुझसे कहा कि 'तू काम पर रह और मैं फादर की तबियत पूछकर आता हूँ। मैं ज़रा मिल आता हूँ'। मैंने कहा, 'तो ठीक है, आप जाकर आइए। मैं बाद में आऊँगा'। मेरी इच्छा बहुत थी, अगर कहीं शरीर छोड़ दिया तो? फिर उस दिन मेरे ब्रदर भादरण गए। उन दिनों बोरसद और भादरण के बीच में गाड़ियाँ नहीं चलती थीं, तो घोड़ा गाड़ी मिल गई। वर्ना कई बार यों ही चलकर जाना पड़ता था!

उनके जाने के कुछ देर बाद मुझे कुदरती रूप से यों ही विचार आया कि 'चलो न भाई, मैं भी जाऊँ, मैं भी तबियत पूछकर आता हूँ। ये काम दूसरों को सौंप देता हूँ और फिर मैं भी जाता हूँ'। इसलिए फिर मैं भी पिताजी से मिलने गया। मैंने वह काम बाकी सभी को सौंप दिया और मैं तो चल पड़ा और घोड़ा गाड़ी में बैठ गया।

फिर देखा, मणिभाई तो वापस लौट रहे थे, उन्हें मिलने गए थे वहाँ से, और मैं जा रहा था, तब हम आमने-सामने मिले। उन्होंने मुझसे पूछा 'तू आ गया?' मैंने कहा, 'हाँ, मुझे अंदर से ऐसा विचार आया कि जाऊँ, तो मैं सभी को काम सौंपकर आया हूँ'। तब उन्होंने मुझसे कहा, 'तो अब तू वहाँ घर जा और मैं वापस काम पर जाता हूँ। तू रहना अभी दो-चार दिन, पिताजी की तबियत नरम है। मैं वहाँ सब कर लूँगा'। तो ब्रदर वापस गए वहाँ पर और मैं 'फादर' के पास आ गया। तो उन्होंने उसी रात जाने की तैयारी कर ली, तब तक वे जा नहीं रहे थे। मैं आ गया तो जाने की तैयारी कर ली, वर्ना तब तक तैयारी नहीं कर रहे थे। तब बा ने कहा, 'अच्छा हुआ तू आ गया। आज तो हालत ज़्यादा खराब है'। फिर कुछ देर बाद वे गुज़र गए। रात को ही उन्होंने सफर पूरा कर लिया।

तो मेरे आते ही फादर चल बसे! अत: जिसके कंधों पर जाना हो उसी के कंधों पर जाते हैं। मैं चार घंटे पहले आया था बड़ौदा से, जबकि बड़े भाई एक दिन पहले ही आकर गए थे। लेकिन जिसके कंधे पर अर्थी जानी होती है, जितना हिसाब होता है, वही चुकता होता है। उन्हें मेरे कंधे पर चढ़कर जाना था, तो उस प्रकार से गए। हमारे ऋणानुबंध खत्म किए।

अभी सभी के फादर हैं, मेरे क्यों नहीं हैं?

मैं बीस साल का था, तब फादर का देहांत हो गया। वह भी हिसाब निकाला था। मैंने कहा, 'बीस साल की उम्र में इन सब के फादर हैं लेकिन मेरे क्यों नहीं हैं?' क्या मेरे भी फादर नहीं होने चाहिए? तब मुझे समझ में आया कि मैंने क्या दगा किया था, जिसकी वजह से फादर का देहांत हो गया। इसका मुझे तुरंत पता चल गया। और मदर आराम से पचास साल तक रहीं। अत: यह सब इस दगाबाज़ी की वजह से है। तो अब ये सारी दगाबाज़ी छोड़ देने की ज़रूरत है। जहाँ कहीं भी ऐसा कुछ हुआ हो न, तो वहाँ कुदरत में वह नोट रहता है।

तब मुझे तुरंत पता चल गया कि इसके पीछे (रहस्य) क्या है? लोगों के तो, पचास-पचास साल के होने पर भी फादर ज़िंदा होते हैं और मेरा क्या है? लेकिन यह गुनाह किए थे।

प्रश्नकर्ता : फादर का देहांत हो गया तो उसमें क्या गुनाह है?

दादाश्री : वह दगाबाज़ी ही की थी न! अत: पितृ भावना के प्रति दगाबाज़ी की थी न,

उस दगाबाज़ी का परिणाम मिला। और मातृभाव में ऐसा नहीं किया था, तो मातृभाव रहा।

मेहमान आए थे, वे गए

प्रश्नकर्ता : संतानों की मृत्यु हुई तब आपकी अवस्था, परिणति कैसी थी?

दादाश्री : बेटे का जन्म 1928 में हुआ था, तब मैं बीस साल का था। तो बेटे का जन्म हुआ था तब पेड़े खिलाएँ थे और फिर जब मैं बाईस साल का हुआ तब उसकी मृत्यु हो गई, 1931 में उसकी मृत्यु हो गई। तब मैंने फिर से पेडे खिलाएँ थे सभी को। कहा कि 'जो आया था वह चला गया।' पहले जो मेहमान आया था, वह चला गया। उन्हें 'मेहमान' कहता था। जो मेहमान आए थे, वे चले गए। फिर बेटी आई थी, वह भी चली गई। उन्हें मेहमान ही कहता था। शादी की तब फिर मेहमान तो आए बगैर रहेंगे ही नहीं न! लौकी का बीज डाला, पानी डाला, खाद डाला, तो फिर क्या होता है? उग निकलती है लौकी। और लौकी उगी तो फिर हर पत्ते पर वापस लौकी लगने लगती है। उसमें तो फिर लौकी लगती है। लौकी की बेल हो तो हर पत्ते पर लौकी लगती है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ!

दादाश्री : उसमें देर कितनी लगती है? तो पहला बेटा हुआ वह दो-तीन साल रहकर फिर चला गया। उसका जन्म हुआ न, तब मैंने पेडे खिलाए थे, मित्रों को, दोस्तों को। कुछ तो करना पड़ता है न! यह तो व्यवहार, दुनिया है। वर्ना, वे टोकते रहते। 'ये बिल्कुल कंजूस हैं, पेडे तक नहीं खिलाए', ऐसा कहते। इसलिए पेडे खिलाए थे।

समझो तो गेस्ट, न समझो तो बच्चे

प्रश्नकर्ता : बेटे की मृत्यु हो गई और पेडे खिलाए, वह तो बहुत गजब की बात है!

दादाश्री : तब मैं उन लोगों से ऐसा कहता कि बेटे की मृत्यु हो गई, तो मुझे मुँह कैसा रखना पड़ता? बनावटी। तो उनका भी मुँह कैसा हो जाता बेचारों का! हें...?

प्रश्नकर्ता : फिर वैसा ही हो जाता।

दादाश्री : मुझे वह ठीक नहीं लगता। तो मैंने कहा, 'चलो, आज पेडे खिलाता हूँ।' तो आठ-दस लोगों की टोली थी, उन्हें पेडे खिलाएँ, चाय-पानी-नाश्ता करवाया। 'दूसरा बेटा हुआ है या बेटी?' मैंने कहा, 'बाद में बताऊँगा, नाश्ता कर लो।' तब कहने लगे, 'अगर बेटा हुआ है तो ज़्यादा खाएँगे।' तब मैंने कहा, 'आप ज़्यादा खाओ, फिर आपको बताता हूँ।' पेडे खिलाने तक मैंने स्पष्ट नहीं किया। यदि ऐसा कहता कि मर गया तो लोग खाते नहीं। इसलिए खिलाने के बाद मैंने कहा, 'वे भाई आए थे गेस्ट (मेहमान), वे चले गए।' क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : गेस्ट चले गए!

दादाश्री : तब वे सब लोग चिल्लाने लगे। 'ऐसा करते हो, ऐसा करते हो?' मैंने कहा, 'अरे, मैं बाप होकर कर रहा हूँ तो फिर अब आपको क्या हर्ज है?' फिर भी डाँटने लगे। मुझसे कहते हैं, 'पेडे खिलाएँ जाते हैं? ऐसा करना चाहिए?' मैंने कहा, 'भाई, यदि आप समझो तो वह गेस्ट है और न समझो तो आपका बेटा है।'

उन सभी लोगों के चेहरे उतर गए। मैंने कहा, 'मेरा नहीं उतर रहा है, तो तुम्हारा क्यों उतर रहा है? वह तो मेहमान था, गेस्ट था।' वह तो गेस्ट था, तो क्या गेस्ट जाएँगे नहीं? गेस्ट को पकड़ कर रख सकते हैं? मुझसे कहने लगे, 'ऐसा नहीं कहना चाहिए, नहीं कहना चाहिए ऐसा। हमने पेडे खाएँ हैं!' मैंने कहा, 'मैं भी खाने लगता हूँ न!' मैं भी पेडे खाने लगा। फिर कलह करने

को रहा? वे तो फिर से आएँगे, यही की यही लौकी लगने में देर कितनी लगेगी? बेल है, निरी लौकियाँ लगती ही रहेगी। फिर बाद में बेटी पैदा हुई (जन्मी)। तो इस तरह से मर जाते हैं और पैदा होते (जन्मते) हैं, पैदा होते हैं और मर जाते हैं।

हमारे बेटे की मृत्यु हो गई, बेटी की मृत्यु हो गई, तब मैं खुश होता था। खुश होता था, यानी ऐसा नहीं था कि अच्छा हुआ, लेकिन वे हों तब भी हाँ, ठीक है और न हों तब भी कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि वे गेस्ट हैं।

प्रश्नकर्ता : जब मेहमान जाते हैं न, तब दुःख होता है।

दादाश्री : यह तो, उस भ्रांति का अमल है न, यानी कि यह सब... हम यह नहीं जानते कि ये गेस्ट हैं। बाकी, ये तो सभी गेस्ट हैं, आते हैं और जाते हैं। जो आते-जाते हैं, वे गेस्ट कहलाते हैं। आपके यहाँ गेस्ट आते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हमारे ये दो...

दादाश्री : हाँ... गेस्ट, तब फिर! गेस्ट को रखना चाहे तब भी नहीं रहेंगे। अगर चार दिन रहने वाले हों और पाँचवे दिन रखना चाहे फिर भी नहीं रहेंगे, भाग जाएगा, वह भी चुपचाप। सम्मान से आए थे तो सम्मान से हमें विदाय करना है। तो मैंने इस तरह मान दिया, तब सभी मुझे ही डाँटने लगे। अरे, डाँटना नहीं चाहिए। सम्मान से जाने देना चाहिए। फिर बेटी आई थी न, उन्हें भी सम्मान से बुलाया था और सम्मान से विदाय किया। तो आए और गए सब। उसके बाद तो कोई नहीं है, मैं और हीराबा दोनों ही हैं।

मृत्यु के समय रियल-रिलेटिव की समझ

प्रश्नकर्ता : दादा, उस समय आपके भीतर क्या समझ उत्पन्न हुई थी, वह बताइए न!

दादाश्री : तब मैंने सोचा, इनसे मुझे क्या कुछ लेना-देना है? जो हिसाब था उसे चुकाकर वह चला गया अपने घर, मैं अपने घर चला जाऊँगा। माँ उनके अपने घर चली गई, मूलजीभाई (पिताश्री) उनके अपने घर चले गए, भाई अपने घर चले गए, सब अपने-अपने घर चले गए। आप भी 'दादा-दादा' करते हुए चले जाओगे और मैं भी चला जाऊँगा। ये दादा सिर्फ व्यवहार तक ही, नाटक में। फिर क्या दादा रहेंगे? फिर तो आत्मा। आत्मा का संबंध सच्चा है! क्योंकि जो हमेशा रहता है, वह मूल मालिक है!

ये व्यवहार के संबंध तो जब तक हैं तब तक। कोई किसी का बेटा होता ही नहीं है। मुझे ऐसा कभी भी समझ में नहीं आया कि कोई किसी का बेटा हुआ है, ऐसा। ऐसा है न, ये हिसाब है। ऋणानुबंध के आधर पर सब होता है। कोई किसी का बेटा नहीं हुआ और कोई किसी का बाप भी नहीं हुआ है। ये तो सिर्फ ऋणानुबंध के संबंध हैं। क्या है? ऋण का अनुबंध है। देने और लेने वालों का। रुपयों का लेन-देन नहीं है, मैंने आपको दुःख दिया था, आप मुझे वह दुःख लौटाने आते हो। तो इस तरह बंधे हुए बैर छोड़ते हैं लोग। यानी कि जब बेटे-बेटी की मृत्यु हो गई तब मैंने सोचा कि 'क्या कोई अपना हुआ?' ये देह ही अपना नहीं होता, तो फिर इस देह का बेटा वह भला कैसे अपना हो सकता है? बन सकता है? बेटा देह का है या आत्मा का?

प्रश्नकर्ता : देह का।

दादाश्री : ये सभी रिलेटिव (विनाशी) संबंध हैं, रियल (हमेशा के) संबंध नहीं हैं। ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्पररी एडजस्टमेन्ट (ये सारे विनाशी संबंध हैं)। ये सारे टेम्पररी एडजस्टमेन्ट हैं, वहाँ हमें क्या करना है? ये सब तो देह को अपना मानते हैं, इसलिए अपना बेटा

मानते हैं, पर देह अपना नहीं है ऐसा जब समझ जाएँगे, तब किसका बेटा माँनेंगे? लेकिन मोह के कारण अपना बेटा लगता है।

पराया कभी अपना हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : बेटा-बेटी दोनों की मृत्यु हो गई तब हीराबा की क्या प्रतिक्रिया थी?

दादाश्री : हीराबा को, जब बेटा-बेटी की मृत्यु हो गई तब अंदर मन में दु:ख हुआ था। तब मैंने कहा, 'ये जा रहे हैं तो हित हो रहा है, अभी। न जाए तो हमें हर्ज नहीं है और जाए तब भी हर्ज नहीं है, ऐसा रखो। वर्ना, इसमें मज़ा नहीं है। बड़े होने के बाद में मज़ा नहीं है इसमें। यह बम ऐसा फूटेगा तब मन में ऐसा होगा कि ये कहाँ...'

प्रश्नकर्ता : ..बड़ा किया!

दादाश्री : हाँ, इसलिए यह अपने आप ही फूट गया तो बहुत अच्छा हुआ, निबेड़ा आ गया! यों ही नहीं जाने देना चाहिए। हम ऐसी इच्छा नहीं कर सकते कि तू चला जा भई। आया है तो कर्म के फल भुगतने ही पड़ेंगे न हमें? हिसाब तो चुकाना ही पड़ेगा न? उसके साथ हिसाब है और जैसे भाव से है वैसे भाव से ही चुकाया जाता है। भाव में भी बदलाव नहीं होता। अत: ये तो सब बैर से बंधा हुआ हैं। तो उस बैर से किस तरह छूट जाए, वह कुशलता आनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : पूर्व जन्म के बैर से ही मिलते हैं।

दादाश्री : यह तो, पहले से ही अपने यहाँ शास्त्रकारों ने कहा था कि कलियुग में घर के लोग पूर्व जन्म के बैर से ही आएँगे, इकट्ठे होंगे। अत: मैंने तो जब बेटा आया था न, तब बचपन में ही पेडे खिला दिए थे। तो भाई, छोड़ो न, बेवजह! क्या करना है? तब हीराबा कहती थी, 'आपमें इसके प्रति कोई प्रेम ही नहीं है, ऐसा बोल रहे हैं आप!' मैंने कहा, 'यह बड़ा होकर शराब पीता और परेशानी होती, वह मुझसे सहन नहीं हो पाता। तो यह सब ठीक ही हुआ है।'

ज्ञान होने से पहले हीराबा हमसे कहती थीं, 'बच्चों की मृत्यु हो गई और अब बच्चे नहीं हैं, हम क्या करेंगे? बुढ़ापे में सेवा कौन करेगा?' उन्हें भी उलझन होती थी! नहीं होगी उलझन? तब मैंने उनसे कहा, 'आजकल के बच्चे आपका दम निकाल देंगे। वे शराब पीकर आएँगे, वह आपको अच्छा लगेगा?' तब वे कहने लगीं, 'नहीं, वह तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा।' तब मैंने कहा, 'शराब पीकर आते। ये आए थे वे चले गए। इसलिए मैंने पेड़े खिलाए।' उसके बाद जब उन्हें अनुभव हुआ तब वे मुझसे कहने लगीं, 'सभी के बच्चे बहुत दु:ख देते हैं।' तब मैंने कहा, 'हम ने आपसे पहले ही कहा था लेकिन आप मान नहीं रही थीं!'

यह पराया क्या कभी अपना हो सकता है भला? बेकार में हाय, हाय, हाय करते हैं! जब यह शरीर ही पराया है, तो फिर इस शरीर के रिश्तेदार। पराया और फिर पराये की पूँजी, क्या वह अपनी हो सकती है?

बड़े भाई की मृत्यु के समय संभाला व्यवहार

हमारे बड़े भाई मणिभाई पुण्यशाली व्यक्ति थे, लेकिन क्या हो सकता था? वे भी कम उम्र में ही चले गए न!

प्रश्नकर्ता : किस उम्र में?

दादाश्री : पचास साल की उम्र में। पूरा शरीर खत्म हो गया था उनका। क्योंकि उन्होंने उस समय इकतीस उपवास किए थे। तो उपवास की वजह से मृत्यु हो गई। उपवास के समय उन्हें हेल्प नहीं हुई थी ठीक से।

इकतीस उपवास करने के बाद उनकी तबियत बिगड़ने की वजह से उनकी लाइफ फेल हो गई।

बड़े भाई की मृत्यु के समय मेरे मन में भय घुस गया कि अगर कोई नहीं आया तो क्या करूँगा? कोई श्मशान में नहीं आया तो क्या करूँगा? सभी लोग सत्याग्रह करेंगे तो?' क्योंकि हुआ क्या था कि वे किसी के लिए भी श्मशान में नहीं गए थे, ऐसे पाटीदार थे भारी! किसी के वहाँ वे खुद श्मशान नहीं जाते थे और मुझे भी नहीं जाने देते थे। कहते थे, 'अरे! श्मशान में नहीं जाना है।'

तब मैंने कहा, 'जब बा मरेंगे तब कौन आएगा?' तब वे कहते थे, 'वह तुझे नहीं देखना है। श्मशान में नहीं जाना है', कहते थे। इसलिए मैं नहीं जाता था। इसलिए फिर मुझे भी ऐसा भय रहा करता था। हमारी बा बूढ़ी थीं। तब मैं सोचता, 'अगर बा मर जाएँगी तो अपने यहाँ कोई नहीं आएगा और मणिभाई को तो किसी की भी नहीं पड़ी है' इसलिए मैं चुपचाप जाकर आ जाता था। हम तो थे व्यवहारिक व्यक्ति व्यवहार संभाल लेते थे। और फिर बा से पहले तो उनकी मरने की बारी आ गई।

लेकिन जब वे गए न, उस दिन चालीस-चालीस लोग बैठे हुए थे! कोई भी आँच नहीं आई।

जगत् में लौकिक व्यवहार का रहस्य

मेरा कहना है, कि किसी की मृत्यु के बाद यदि आज आप रोओगे, तो शर्त रखो कि, 'भाई, मैं तीन साल तक रोता ही रहूँगा; उसके बाद रोना बंद करूँगा।' ऐसी कोई शर्त रखो, 'एग्रीमेन्ट' करो। जब स्त्रियाँ भी रोने आएँ तो उन्हें कहो कि, 'शर्त लगाकर फिर रोना कि तीन साल तक रोएँगे।' लेकिन यह तो पंद्रह दिनों बाद कुछ भी नहीं! और फिर बल्कि अच्छी साड़ी पहनकर हँस-हँसकर शादियों में भी जाती हैं! इसका क्या कारण है? मूर्छा है। अब ऐसे मूर्छित के साथ हम कहाँ रोने बैठें? हमें तो वहाँ पर बस नाटक करना पड़ता है। वहाँ पर हम कहीं हँस नहीं सकते। हँसेंगे तो मूर्ख कहलाएँगे, लेकिन दिखावा तो करना पड़ेगा न? नाटक में जैसे अभिनय करते हैं, वैसा अभिनय करना पड़ेगा। आँखों में से पानी नहीं आ रहा हो तो बाथरूम में जाकर ज़रा पानी वाली आँखें कर आना, लेकिन आप तो भाई नाजुक व्यक्ति हैं, हद कर दी! थोड़ा कहते ही आँखों में से पानी निकलने लगा!

इस जगत् का सारा खोखलापन मैं देख चुका हूँ, क्योंकि मैं सच्चा पुरुष था। मुझे ऐसा लौकिक रास नहीं आता था। ऐसा लौकिक तो रास आता होगा? रोना मतलब रोना ही आना चाहिए, लेकिन फिर मैंने देखा कि यह जगत् खोखला है। क्या यह व्यापार सच्चा है? आपको कैसा लगता है? लेकिन फिर यह झूठा भी नहीं है। यह तो लौकिक है। हमें भी वैसा लौकिक ही करना है। लौकिक यानी जैसा व्यवहार लोग अपने साथ करें, वैसा ही हमें भी करना चाहिए। आपको ऐसा लौकिक अच्छा लगता है?

लौकिक यानी व्यवहार। सब रोते हैं तो हमें भी रोना चाहिए लेकिन रोए बगैर रोना है, (वास्तव में) रोना नहीं है। लौकिक में सब समझ में आता है, लेकिन इसमें समझ में नहीं आता। इसमें सचमुच में रोते हैं!

ऐसा है न, कि व्यवहार सारा दिखावटी है और निश्चय वास्तविक है। अब दिखावटी रकमों को क्या हम खत्म कर सकते हैं? ऐसे दिखावटी रकम खत्म नहीं कर देते न? लेकिन इसमें तो दिखावटी को खत्म कर दिया, जहाँ उस दिखावटी को ही सही मान लिया है! यानी बात को समझने की ज़रूरत है।

स्वार्थ की सगाई के लिए रोते हैं

जब हमारे बड़े भाई गुज़र गए, उस समय हमारी भाभी उम्र में छोटी थीं, तब जो कोई आता, वह उन्हें रुलाता, जो कोई आता वह उन्हें रुलाता! तब मुझे हुआ कि ये भाभी अधिक 'सेन्सिटिव' हैं, तो ये लोग इन बेचारी को मार डालेंगे! इसलिए फिर मैंने बा से कहा कि, 'लोगों से आप ऐसा कहना कि आपको मेरी बहू के साथ मेरे बेटे से संबंधित कोई बातचीत नहीं करनी है।' अरे, यह क्या तूफ़ान? अरे, मनुष्य होकर बंदर के घाव जैसा करते हो? आप से तो बंदर अच्छे! बंदर तो घाव को बड़ा कर-करके मार डालते हैं! वैसा ही आप कह-कहकर कर रहे हो। तो आप में और बंदर में फर्क क्या रहा? लोगों को रुलाने के लिए आते हो या हँसाने के लिए आते हो? ये तो आश्वासन देने जाना है, उसके बजाय बेचारे को मार ही डालते हैं! लेकिन जगत् का नियम ऐसा है कि आश्वासन देने वाला व्यक्ति यदि खुद ही दुःखी हो, तो क्या आश्वासन देगा? वह तो वही देगा जो उसके पास है, इसलिए आजकल लोग दुःखी हैं न! अतः हमें सामने वाले से ऐसा कहना चाहिए कि कोई व्यक्ति सुखी हो, अंतर के सुख वाला हो तो यहाँ पधारना, वर्ना यहाँ पर मत पधारना और घर बैठे आश्वासन पत्र लिख देना। बेकार ही इन भूतों का यहाँ पर क्या करना है? भूत तो आकर बल्कि बेचारे को रुलाते हैं।

अपने वहाँ पर 'काण काढ़ो (किसी मृत्यु पर रोना-धोना करना), लौकिक करो' कहते हैं। 'काण करो, मोंकाण करो।' वह किसलिए? कि ऐसा करके सबकुछ ठंडा कर दो। ये रो रहे हैं, तो उनकी सारी भावनाएँ निकल जाने दो, कहेंगे। आँसू नहीं निकलेंगे तो मनुष्य पागल हो जाएगा। इसलिए रोने देना पड़ता है। रोने में भी 'ओबस्ट्रक्ट' नहीं करना चाहिए और हँसने में भी 'ओबस्ट्रक्ट' नहीं करना चाहिए, वर्ना मनुष्य 'मैड' (पागल) हो जाएगा। इसलिए अपने यहाँ पर जो होता है वह ठीक ही होता है, फिर भी अब अपने यहाँ काण वगैरह सब बंद हो गया है। लोग समझ गए कि इन बातों में कोई सार नहीं है। और बाईसाहब भी समझ गईं कि, 'छोड़ो न, जो गए वे थोड़े ही वापस आएँगे? लेकिन बैंक में तीस हज़ार रखकर गए हैं न!' यानी कि ये सब स्वार्थ के संबंध हैं। इनमें कुछ जगह पर अंदर अच्छी भावनाएँ होंगी, लेकिन बहुत कम जगह पर। मूल संस्कार बहुत कम जगह पर बचे होंगे; बाकी तो सबकुछ स्वार्थ में, और मतलब में ही घुस गया है।

स्वजन की मृत्यु के पीछे कोई नहीं मरता

दिवालीबा ने किस तरह यह सारा वैधव्य बिताया होगा?

हीराबा : वह तो बीत ही जाता है। सभी तो बिताते ही हैं न। पति की मृत्यु हो जाए, तो फिर समय बिताना पड़ता है।

दादाश्री : फिर भूल जाते हैं?

हीराबा : हाँ, तो वे भूल गई!

दादाश्री : जब मणीभाई जीवित थे तब उनसे कहती थीं न, 'आप नहीं रहोगे तो मैं तो मर जाऊँगी।'

हीराबा : अरे, कोई नहीं मरता पीछे।

दादाश्री : वे ऐसा कहती थीं, 'आप नहीं रहोगे तो मैं जी नहीं पाऊँगी।' तब मैं समझता था कि ये कितना रौब जमा रही हैं?

हीराबा : कोई भी नहीं मरता, सभी जीते हैं। पति की मृत्यु हो जाए तब भी, वे तो खाते-पीते और सब मज़ा करते हैं।

दादाश्री : आप तो नहीं जी पाती न?

हीराबा : अरे, मैं भी जी पाती। सब, क्या मर जाते हैं पीछे? कोई भी नहीं मरता।

दादाश्री : ऐसा!

हीराबा : कोई भी नहीं मरता।

दादाश्री : यह दुनिया ऐसी है?

हीराबा : अरे! दुनिया तो, बिदा करके फिर से शादी कर लेती है।

पक्का विश्वास, दादा की उपस्थिति में देह छूटा

प्रश्नकर्ता : हीराबा बहुत भोली, देवी जैसी, बहुत ही सरल, ज़रा भी *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) नहीं।

दादाश्री : वे मुझसे कहती थीं, 'मैं अब चली जाऊँ तो अच्छा।' मैंने कहा, 'उसके लिए जल्दी क्यों कर रही हो, किसलिए जल्दी कर रही हो?' तब कहती, 'नहीं, आपके के बाद मुझे नहीं रहना है, मुझे तो पहले ही जाना चाहिए।' यानी नियम के आधार पर, हाँ। ऐसा प्रेम के आधार पर नहीं, नियम के आधार पर। आपके बगैर मुझे अच्छा नहीं लगेगा, ऐसा नहीं है, परंतु नियम ऐसा है, कि 'मैं सौभाग्यवती होकर जाऊँ तो मुझे गंगा स्वरूप (विधवा) नहीं होना पड़ेगा।'

प्रश्नकर्ता : दादा, हीराबा की वह बात सही निकली। वे मुझसे कहती थीं कि 'जब मैं जाऊँगी तब दादा उपस्थित रहेंगे। मुझे प्रॉमिस दिया है', कहती थीं। तो जब वे बहुत बीमार हो जाती थीं और आप बड़ौदा में उपस्थित नहीं होते थे न, तब मुझे घबराहट नहीं होती थी!

दादाश्री : हाँ, ऐसा विश्वास तो होना चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : विश्वास! और आप यहाँ आ जाते थे न, उसके बाद ज़्यादा चिंता नहीं होती थी, क्योंकि दादा तो यहाँ है। लेकिन आज से काफी साल पहले मुझसे कहा था, कि आप पंद्रह दिन यहाँ रहो, पंद्रह दिनों के लिए मुंबई जाओ। और बातों-बातों में कहा था, 'उनका प्रॉमिस है कि जब मैं देह छोडूँगी तब वे उपस्थित रहेंगे।'

दादाश्री : बहुत जबरदस्त विश्वास कहा जाएगा, इस तरह अपने आप पर विश्वास हो तो वह काम किए बगैर रहेगा ही नहीं न! खुद पर विश्वास!

अंतिम महीनों में साथ रहकर मुक्त किया

वे नटुभाई पिछले साल से मुझसे कह रहे थे कि, 'हीराबा यह दीपावली नहीं देख पाएँगी।' तो मैं सचेत हो गया था। मैंने सोचा, 'दीपावली से पहले कुछ हो जाए तो...' इसलिए यहीं रहता था, जाता ही नहीं था। मैंने सोचा, 'इसने कहा है त्राहित की तरह, राग-द्वेष रहित! वाणी कुछ गलत नहीं हो सकती। कुछ बोल रहा है, इसलिए ठीक है।' फिर यहीं रहा था।

प्रश्नकर्ता : और हो सकता है कि उसके लिए एक्सिडेन्ट भी निमित्त हो कि जिससे आपको यहाँ पर रहना ही पड़े।

दादाश्री : सबकुछ निमित्त ही है न! हिसाब सारे चुकता करते हैं न! अंत में मुक्त किया। तीन महीने तक साथ में रहे थे, साथ ही साथ, चौबीसो घंटे।

अंतिम दिन तक सिर पर पैर रखकर की विधि

हर रोज रात में विधि-बिधि सब करते थे। ब्लड प्रेशर था, पहले प्रेशर की बहुत परेशानी थी, इसलिए सिर पर पैर रखकर विधि करते थे। तो बंद हो गया था। सिर पर दोनों पैर रखकर सिर्फ उनकी ही विधि करते थे। अंत तक वे विधि करते थे। अंतिम दिन भी वही किया था। पहले

यहाँ अँगूठे पर विधि करते थे, फिर सिर पर। इस तरह दस मिनिट निकालते थे, हर रोज़ की। इतनी हमारी भक्ति। बाकी, शरीर तो हमसे उठाया नहीं जाता था और वे ऐसा होने भी नहीं देती थीं। 'इतना कर दीजिए न', कहती थीं। यों दो महीनों से विधि की न, उससे उन्हें समाधि रहती थी। फिर विधि कर लेने के बाद 'जय सच्चिदानंद' कहती थीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ। सभी महात्मा उन्हें 'सच्चिदानंद' कहते, तो सामने से जवाब मिलता था 'सच्चिदानंद'।

दादाश्री : हाँ, जवाब मिलता था और वे सभी को पहचानती भी थीं!

प्रश्नकर्ता : आवाज पर से पहचानती थीं, दादा।

दादाश्री : हाँ...

डॉक्टर तो निमित्त, चल रहा है सब कुदरती

उन्हें कभी दु:ख हुआ ही नहीं था। वे अंत तक बातें करती थीं। वैसे किसी की पड़ी नहीं थी, किसी में भी दखल नहीं। किसी का नुकसान हो, ऐसा कुछ भी नहीं था। सभी का अच्छा हो, ऐसी भावना!

प्रश्नकर्ता : पर श्वास में कुछ अटक गया था?

दादाश्री : नहीं, वह तो कुदरत का नियम ही ऐसा है कि उस समय डॉक्टर का भी कफ अटका दे। हम डॉक्टर से कहें, 'सब का कफ निकाला।' तब कहते हैं, 'यह नहीं निकलेगा।' कुदरत को कफ अटका देने में देर कितनी लगती है? उसमें मनुष्य की क्या बिसात? मनुष्य तो एक निमित्त है और वह निमित्त रूप से काम कर सकता है। डॉकटर से हम 'ना' नहीं कह सकते, कि तुम क्या कर सकोगे? क्योंकि वह निमित्त है।

अंत में, समाधि मरण हो ऐसी विधि दादा की

शाता (सुख परिणाम) वेदनीय कहाँ से उत्पन्न हो गई? ऐसा कैसा पुण्य कहा जाएगा? मन में तो भय रहा करता था कि यदि कोई *अशाता* (दु:ख परिणाम) आ जाए तो? इसलिए मैं रोज़ प्रार्थना करता था, कि उन्हें *अशाता* न आए। ऐसे नाजुक व्यक्ति को *अशाता* आए उसके बजाय मुझे आ जाए।

प्रश्नकर्ता : ऐसे समय में तो लोग बहुत चिढ़ते रहते हैं, बाकी सभी तो चिढ़ते रहते हैं।

दादाश्री : हाँ, विधियाँ हुई न। वे तो कभी चिढ़ती ही नहीं थीं।

बाकी सभी जो चिढ़ते रहते हैं न, उसका कारण यह है कि खुद को दु:ख होता है, वह उनसे सहन नहीं होता। इन्हें दु:ख ही नहीं होता था न!

देखो न, एक अक्षर भी कभी बोला नहीं। शोर नहीं, शराबा नहीं, शिकायत नहीं। शाता वेदनीय हमेशा के लिए! *अशाता* न हो तभी ऐसा बोल सकते हैं न, वर्ना चिढ़ते ही रहते हैं। वर्ना ज्ञानी को भी अशाता वेदनीय होती है। असर नहीं होता, वह चीज़ अलग है। अशाता वेदनीय हो तो शब्द कठोर निकलते हैं। उनका तो वह भी कठोर नहीं था।

इसीलिए मैं रोज़ विधि करता था कि अशाता वेदनीय न आए तो अच्छा। अभी तक नहीं आई। और अंतिम दिन आ जाए तो? इसलिए मैंने उनकी विधियाँ की थीं, करेक्ट। आधी रात में भी फिर बातचीत की थीं। और उस दिन हमें हर रोज के जैसा ही लगा। और उन्होंने कहा कि, 'मेरा यह हाथ दर्द कर रहा है।' तो थोड़ी देर दबाया, तब कहने लगी, 'अब ठीक हो गया।' और कुछ

नहीं। रोज़ शाता वेदनीय रहती थी और देखो मरते समय समाधि मरण ही था न!

ज्ञानी देखने मिले हर एक व्यवहार में

लेकिन उन्हें दु:ख ही नहीं हुआ था, किसी प्रकार का नहीं। सिसकियाँ भी नहीं ली थीं। इसलिए मेरे मन में ऐसा हो रहा था, कि अभी तक तो कभी भी इन्होंने सिसकी नहीं ली है, यदि अंतिम दो-तीन दिन में लेंगी तो, इसलिए मेरे मन में संकोच हो रहा था, लेकिन वह भी नहीं हुआ। बहुत पुण्यशाली!

प्रश्नकर्ता : सभी व्यवहार में आप थे, ऐसा हमें कहाँ देखने को मिलेगा?

दादाश्री : नहीं मिलेगा, मिलेगा ही नहीं, परंतु यह तो अक्रम विज्ञान है इसलिए। और उसमें (क्रमिक में) तो बिल्कुल अलग ही हो जाते हैं न! उनका व्यवहार रहता ही नहीं न!

सालों का रहा साथ, फिर शोक क्यों?

हीराबा की शादी तेरहवे साल में हुई थी, तो उस बात को आज तिरसठ साल हो गए तब कहती हैं, 'जा रही हूँ'। वह साथ तो कितना बड़ा कहा जाएगा न, नहीं? साथ बड़ा नहीं कहा जाएगा?

प्रश्नकर्ता : कहा जाएगा, बड़ा ही कहा जाएगा।

दादाश्री : कम नहीं कहा जाएगा। फिर उसके पीछे शोक रहता ही नहीं न! अब, छूटना तो था ही न।

प्रश्नकर्ता : हाँ, छूटना ही था।

दादाश्री : छूटने के लिए तो ये दिवालिया निकला था न, सभी अंगों का। फिर शब्द भी बंद हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, शब्द भी बंद हो जाता है।

दादाश्री : शब्दों को भी जिह्वाग्र हो जाता है। बोलना होता है क्या और निकलता है क्या, ल... ल... ल... ऐसा होता है।

अंत में तो जाना है हमें

मैंने कहा, 'दुकान टूट गई हो न, तो दूसरी नयी बनाना अच्छा है।' वहाँ खंभे गिर गए हों, दूसरा गिरने की तैयारी में हो, छप्पर गिर रहे हों और तब भी रहने वाला कहता है, 'नहीं, मुझे इसी में रहना है।' उसे निकलना अच्छा नहीं लगता। क्यों बोल नहीं रहे?

प्रश्नकर्ता : घर छोड़ना अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : पर छोड़ना अच्छा नहीं लगता, वह भी आश्चर्य है न!

हीराबा से तो मैंने पहले ही पूछ लिया था, 'हमें जाना पड़ेगा?' 'उसके बगैर चारा ही नहीं है', कहती थीं। और मैंने कहा, 'मुझे बुढ़ापा आ गया है।' 'वह आएगा न, शोर क्यों मचा रहे हो? वह तो आएगा ही' कहती थीं। मैंने मज़ाक करने के लिए कहा, 'ये लोग मुझसे कहते हैं कि आप बूढ़े हो गए!' तब कहती थीं, 'वह बुढ़ापा तो आएगा, नहीं लाना हो, फिर भी आएगा। हमें तो जाना है।'

हीराबा की मृत्यु के समय भी उतनी ही स्वस्थता

रात को अच्छी तरह से सारी बातें-वातें कर रही थीं। तीन बजे तो *गामठाण* (जिस पर गाँव बसा हो, वह जमीन) छोड़ दिया।

प्रश्नकर्ता : कैसे पता चला तीन बजे, दादा?

दादाश्री : वे सभी तो जागे थे न। रोज़ जागकर देखते थे न! तब थोड़ा बहुत वह (कफ) हुआ फिर चली गई। लेकिन अच्छी मृत्यु हुई। कोई दु:ख नहीं। और अभी तक उन्हें किसी ने एक बार भी उन्हें शोर मचाते नहीं देखा, कि मुझे

ऐसा हुआ या वैसा हुआ। शिकायत की जगह शांत रहते थे। परेशानी में मैंने उन्हें नहीं देखा। तो शुरू से, पहले से समाधि थी न!

हम रात को बिस्तर में बैठे थे, रसिकभाई नीचे से बताने आए कि 'हीराबा चले गए।' रात को तो हम सभी बैठे थे। ऐसी कोई बातचीत ही नहीं थी। सभी पिछली बातें ही कर रहे थे, वे (हीराबा) खुद भी। वे सो गई उसके बाद हम भी सो गए। फिर ये लोग जब देखने गए तब भीतर कुछ नहीं था। उसके बाद रसिकभाई ने ऊपर आकर मुझे बताया। मैंने कहा, 'मैं विधि कर रहा हूँ। जब तक विधि पूरी कर लूँ तब तक आप सभी व्यवस्था करो।' तब तक एक घंटे मेरी विधि चलने वाली थी।

श्मशान जाते समय भी निरंतर ज्ञाता-द्रष्टा

उन्हें पालकी में घुमाने के बाद मामा की पोल में पालकी रोकी, और नीचे रखी थी थोड़ी देर, घर के आगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा, वह अच्छा किया।

दादाश्री : उनके साथ रहने वाले सभी रो रहे थे, वह मैंने देखा, हमारे वहाँ।

प्रश्नकर्ता : उनका भी वहाँ जाने का भाव था।

दादाश्री : फिर सभी ने मुझ से पूछा, 'आप आएँगे?' मैंने कहा, 'हाँ, ज़रूर।' हीराबा जा रही हैं और मैं छोड़ने न आऊँ तो गलत कहा जाएगा न! इसलिए 'मैं हीराबा को छोड़ने आऊँगा', कहा। हीराबा कहाँ गई हैं? नाम गया और ठिकाना गया। नाम और ठिकाना दोनों ही गए न, जिसमें रहती थीं वह घर।

मैं भी श्मशान में गया था, उस व्हीलचेर पर। सभी कह रहे थे कि गाड़ी में आइए, तब मैंने कहा, 'यदि गाड़ी में आऊँगा तब तो मुझे रास्ते में नहीं मिलेंगे न!'

प्रश्नकर्ता : आजकल सभी गाड़ियों में ही जाते हैं, दादा।

दादाश्री : नहीं, वे तो सभी रौब वाले हैं। लेकिन मैं कोई रौब वाला नहीं हूँ न! मैं तो उनके साथ ही साथ गया, व्हीलचेर में बैठकर।

प्रश्नकर्ता : व्हीलचेर में!

दादाश्री : व्हीलचेर, लड़के धकेल रहे थे। फिर गाड़ी वाले कहने लगे, 'दादा, इसमें तो बहुत टाइम लगेगा। बैठ जाइए गाड़ी में।' 'नहीं, आज तो हीराबा के साथ ही साथ अंत तक उनके पीछे-पीछे आएँगे, धीरे-धीरे।' लोग भी देखते थे कि दादाजी की क्या हालत हुई है! हीराबा के साथ ही साथ, उनके पीछे व्हीलचेर लेकर! और लोग आसपास की छत पर से बैठे-बैठे देखते थे। उन्होंने पेपरों में पढ़ा था न, इसलिए। हम जिस पुराने घर में रहते थे वहाँ पर भी ले गए थे और थोड़ी देर रुके थे। दो मिनिट वहाँ रुके। वहाँ पर लोग मुझे देख रहे थे और मैं निरंतर ज्ञाता-द्रष्टा था। शायद अभी नहीं रह पाता, उतना अच्छा नहीं रह पाता। और हम पर असर ही नहीं हुआ था न!

अंत तक निभाया आदर्श व्यवहार

यह तो व्यवहार है और व्यवहार आदर्श होना चाहिए। हम व्यवहार में आदर्श हैं! देखो न, श्मशान में हीराबा के साथ आए थे न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह देखा न, दादा। सभी ने देखा। कई लोग पूछ रहे थे, 'दादा आएँ थे?' मैंने कहा, 'हाँ, दादा अंत तक आएँ थे।'

दादाश्री : श्मशान में न जाए तो लोग समझते हैं कि 'फिर से शादी करेंगे।' हमारे यहाँ एक कहावत है कि तीस-चालीस साल के हो न और फिर से शादी करने वाले हो तो श्मशान में

नहीं जाते। इसलिए लोग समझ जाते हैं कि श्मशान में नहीं आए हैं यानी फिर से शादी करेंगे। ऐसी कहावत है हमारे यहाँ और वास्तव में ऐसा ही है, श्मशान में गया तो फिर से शादी नहीं कर सकता। यह देखो, हमने खुले आम आकर कह दिया न, 'भई, शादी नहीं करेंगे।'

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कल कहा था कि 'अब हम तो विधुर कहलाएँगे।'

दादाश्री : हाँ, श्रीमद् राजचंद्र ने कहा था, 'निर्दोष आनंद करवाना।' देखो, ये सारा निर्दोष आनंद! किसी को किंचित्मात्र दु:ख नहीं होता।

दु:ख हमें स्पर्श ही नहीं करता

प्रश्नकर्ता : हीराबा गए, उस समय भीतर थोड़ा सा दु:ख हुआ था?

दादाश्री : नहीं, हम वीतराग ही हैं न! हमें किसी प्रकार का कलेश-कलह कुछ होता ही नहीं न! आपको भी वीतराग बनाया है न!

हमें कुछ स्पर्श नहीं होता। इस जगत् में ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि हमें स्पर्श कर सके। हमें दु:ख स्पर्श नहीं करता लेकिन आपको दु:ख का स्पर्श हो तब भी हम जोखिमदार हैं! आप साठ हज़ार लोगों को दु:ख का स्पर्श हो तब भी हमारी जोखिमदारी है! दु:ख का स्पर्श हो ही क्यों? यह दादा का वीतराग विज्ञान है! जहाँ चौदह लोक के, पूरे ब्रह्मांड के नाथ प्रकट हुए हैं, वहाँ कैसी कमी रहेगी? जो माँगो वह मिलेगा।

यदि हमें दु:ख होता है तो ज्ञानी ही नहीं कहलाएँगे। हमें किसी प्रकार का दु:ख ही नहीं होता। हमें दु:ख स्पर्श ही नहीं करता, कभी भी!

प्रश्नकर्ता : हाँ, आप सर्वज्ञ हैं, आप ज्ञानी हैं, ऐसा लिखा है लेकिन स्वाभाविक रूप से दु:ख तो होता है न?

दादाश्री : जिन्हें किसी भी प्रकार से दु:ख होता ही नहीं, स्वाभाविक या अस्वाभाविक, उन्हें ज्ञानी कहते हैं। इस शरीर में ही नहीं रहते हैं हम। शरीर में रहेंगे तो दु:ख होगा न! यानी हमें दु:ख ही नहीं होता। हम रोएँ तब भी दु:ख नहीं होता। ये अंबालाल रोएँ तब भी दु:ख नहीं होता। अर्थात् बहुत अलग प्रकार की है यह दशा! समझ में आता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, उस हकीकत को मैं समझ सकता हूँ।

दादाश्री : हाँ! और सिर्फ हमें ही नहीं, इन सभी को भी दु:ख नहीं होता। इन सभी को एक भी दु:ख हो तो हमारी ज़िम्मेदारी है। दु:ख क्यों होना चाहिए मनुष्य को? क्या गुनाह किया है कि मनुष्य को दु:ख होगा? यानी यदि उनकी पत्नी की मृत्यु हो जाए तब भी दु:ख नहीं होता। हमें आघात या दु:ख नहीं होता। बल्कि आपका जो दु:ख है उसे हम ले लेते हैं।

रहे-गए में समस्थिति

लोग तो ऐसा ही समझेंगे न, कि दादा को बहुत दु:ख हुआ होगा! दादा पर असर देखते हैं तब पता चलता है कि हीराबा गए या रहे हैं, वे दोनों स्थिति समान ही होती हैं। कैसी होती है? रहे हो तो भी समान, गए हो तो भी समान। दोनों स्थिति समान होती हैं। अभी तक हमारे पेट का पानी नहीं हिला है। यहाँ घर पर आकर जशुभाई से बात की, पर कुछ असर नहीं हुआ है। लेकिन व्यवहार में हम ऐसा कहते हैं कि 'भाई, भीतर होता तो है ही न।' आप सभी से नहीं कहते, परंतु व्यवहार में, बाहर तो हम कहते हैं। वे पूछें, 'हीराबा के प्रति आपको दु:ख होता है न?' मैं कहा, 'हाँ, होता तो है न, भई। नहीं हो ऐसा हो सकता है?' वर्ना, उन्हें यह हिसाब गलत लगेगा। कहते, 'यह किस प्रकार का हिसाब है? ऐसा

कैसे हो सकता है?' आपको सच लग रहा है मैं कह रहा हूँ वह, कि हमें असर ही नहीं होता किसी प्रकार का? इस वर्ल्ड में ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि हम पर असर कर सके। यदि आपके ही दु:ख मैंने ले लिए हैं, तो मेरे पास दु:ख कहाँ से रहेगा? है दु:ख किसी तरह का? तो अच्छा हुआ, दादा मिले तब से दु:ख ही नहीं है न?

हमारी स्थिरता नहीं जाती

प्रश्नकर्ता : जब हीराबा गए तब आपने स्थिरता कैसे रखी थी?

दादाश्री : मुझ में तो वे गए तब भी स्थिरता थी और थे तब भी भीतर उतनी ही स्थिरता रहती थी। मैं इस देह में ही नहीं रहता न! देह से अलग रहता हूँ मैं। इस देह से उनका संबंध है, मेरा किसी प्रकार का संबंध नहीं है। इसलिए मैं अलग रहता हूँ। परंतु व्यवहार सुंदर, उन्हें 'हीराबा' कहकर बुलाता था। हममें स्थिरता ही होती है। मुझे गालियाँ दे, मारे, थप्पड़ मारे तब भी स्थिरता ही रहती है। हमारी स्थिरता कभी नहीं जाती।

हीराबा की मृत्यु के समय भी प्रतिक्षण ज्ञान में

हीराबा को ले गए थे तब तो बहुत लोगों के चेहरे ढीले पड़ गए थे! उनके आँख में से ज़रा-ज़रा पानी निकल रहा था लेकिन यदि मेरी आँख में से पानी निकलता तो उनका ज्यादा निकलता न? वर्ना, हु हु भी हो जाता (सिसकियाँ लेने लगता) फिर। पूरी तरह से हार्ट, सब से नरम हार्ट (दिल), परंतु बिल्कुल बंद।

मेरी आँख में से भी पानी निकलता है, क्योंकि हमारा हार्ट नाजुक है। पानी किसकी आँख में से नहीं निकलता? जिसका हार्ट मजबूत हो चुका हो और बुद्धि पर ले गया हो, तब। हमारा हार्ट तो बहुत नाज़ुक है, बच्चा रोता है वैसे रोते हैं। लेकिन यह ज्ञान हाज़िर रहता है न! ज्ञान को हमें हाज़िर रखना पड़ता है। एक सेकन्ड का छोटे से छोटा भाग भी यदि (ज्ञान) हट गया होता तो तुरंत पानी निकल जाता। जिनकी आँख में बहुत पानी आता हो, उनसे हम दूर बैठते हैं।

और वहाँ हमें हास्य बंद करना पड़ता है। यह तो जगत् व्यवहार है। और कच्ची बुद्धि वाला तो कहेगा कि 'देखो न, हृदय पत्थर जैसा है, वे हँस रहे हैं अभी भी। उसे टीका करने का मौक़ा मिल जाता।

फिर अपने महात्माओं की उपस्थिति में हम हँसते हैं लेकिन दूसरों की उपस्थिति में ऐसा नहीं होता।

अब रोना यानी क्या है, कि उपयोग छोड़ देना है। लोगों को (रोते हुए) देखते हैं तो हमें एकदम से रोना आ जाता है। हमारा उपयोग तो निरंतर रहता है। हीराबा के समय तो हमारा उपयोग था! एक सेकन्ड भी कुछ रोना नहीं हुआ था, जैसा था वैसा। हीराबा की इच्छा नहीं थी कि आप रोना। ये लोग तो बोलेंगे नहीं लेकिन मन में कहेंगे, कि 'पत्थर जैसे हैं', इसलिए रोना पड़ता है। लेकिन मुझे कोई 'पत्थर जैसे है', ऐसा नहीं कहेगा।

असर न हो सके ऐसा ताला लगाया था

हम तो ज्ञानी हो बैठे हैं इसलिए हीराबा की मृत्यु हुई थी तब लोग मेरे सामने देख रहे थे न, कि दादा कितने ज्ञान में हैं और कितने इसमें हैं! परंतु एक क्षण के लिए वे अन्य कुछ नहीं देख सकते थे, निरंतर ज्ञान ही। पल-पल नहीं, समय-समय पर। समयसार का ज्ञान रहा था।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने ऐसा क्यों कहा कि 'ज्ञानी हो बैठे हैं?' आप तो ज्ञानी ही हैं।

दादाश्री : नहीं, लेकिन वे लोग... अज्ञानी

लोग तो ऐसा ही बोलेंगे न! कहेंगे, 'ज्ञानी हो बैठे हैं, देखो तो सही, कैसी गड़बड़ चल रही है!'

'हीराबा मेरी वाइफ हैं', वह एक्जेक्ट मेरी मान्यता में रहता निश्चय से, तो मुझे रोना आए बगैर नहीं रहता न! लेकिन इसमें तो मैं हँसा भी नहीं और रोया भी नहीं। लोगों ने अंत तक हीराबा के पीछे मुझे देखा। मेरी आँखों में देखा था, लेकिन कुछ मिल नहीं पाया! एक क्षण भी हम उपयोग नहीं चूकते, वर्ना हम भी सिसकियाँ लेने लगते। लोगों को रोता देखते न तो सिसकियाँ लेने लगते। क्या होता है? हमें मरने वाले के प्रति रोना नहीं आता। जीवित लोगों को रोता देखते हैं तब मन भर आता है। वह हमसे देखा नहीं जाता। इसलिए इस प्रसंग में हम जीवित लोगों को रोता देखते थे न, वहाँ हम देखते-करते थे लेकिन कुछ असर न हो सके, इतना जबरदस्त ताला लगा दिया था। अंत तक, श्मशान में बैठे थे तब भी नहीं, असर ही नहीं। नो इफेक्ट (असर नहीं)!

सारे असर को मैं देखता रहता था

प्रश्नकर्ता : चंद्रकांतभाई की मृत्यु के समय आप में वह रिएक्शन आया था न?

दादाश्री : हाँ, आया था। यहाँ गाड़ी में से उतरा न, तब मुझ में भी रिएक्शन आया था।

प्रश्नकर्ता : वह मुझे जानना है, ज्ञानी पुरुष का रिएक्शन कैसा होता है?

दादाश्री : यह रिएक्शन तो, रात को देह ज़रा शोक स्वभावी हो गया और आँखें भी ज़रा ढीली पड़ गई, चेहरा भी ढीला पड़ गया था। वह जो सारा असर हो गया, वह भी मुझे दिखाई दिया सब। मैं उसे देखता रहता था। सारे असर को मैं देखता रहता था। इसलिए फिर कंट्रोल से बाहर और आगे नहीं जाने देता था। क्योंकि आगे जाता तो बाकी के सभी लोगों को दु:ख हो जाता, भारी पड़ जाता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जब कांतिभाई गए तब आपमें ज़रा भी इफेक्ट नहीं दिख रहा था।

दादाश्री : नहीं, उस दिन रोना नहीं आया था। लेकिन उस दिन मैं दूसरे गाँव था। यहाँ रहता न, तो रोना आता। मुझे रोना क्यों आता है? मरने वालों के प्रति नहीं आता, दूसरें लोगों को रोता देखूँ न, तो मुझे (रोना) आता है। वह तो, जहाँ पर कोई एकदम से फूट-फूटकर रो पड़े और उसे देखूँ तो फिर मुझ पर असर हो जाता है। अभी भी असर होता है। यहाँ कोई रो रहा हो न, तो असर हो जाता है। लेकिन उसका असर दूसरों पर ज़्यादा हो जाएगा, ऐसा मानकर उसे भी हम कंट्रोल में लेते हैं। दूसरों पर ज़्यादा असर हो जाता है न! बाकी, शरीर तो वैसा ही रहता है, देह तो वैसा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं, दादा। वे दोनों स्थिति, जब मदर का देहांत हुआ तब और चंद्रकांतभाई के समय, इन दोनों में क्या फर्क था?

दादाश्री : उन दिनों तो सिर्फ, मदर के प्रति प्रेम ही था। प्रेम ही रुलाता है और यह तो ज्ञाता-द्रष्टा सहित था। लेकिन चेहरा कैसा हो गया था वह अभी तक मुझे पता है, इन लोगों को भी पता चले और मुझे भी पता चले, ऐसा चेहरा हो गया था, नहीं? यह ज्ञान होने के बाद। ये भाई देख गए थे, चुपचाप आकर, नीचे झुककर, उन्हें असर के बारे में जानना था कि इसका कैसा असर हो गया दादा पर? आप देख गए थे, सही? क्या-क्या देखा था?

प्रश्नकर्ता : सबकुछ देखा था।

दादाश्री : आँखों में कुछ देखा था?

प्रश्नकर्ता : आँखों में भी पानी आया था।

दादाश्री : था। जितना उन्हें दिखाई दे रहा था, उतना मुझे भी दिखाई दे रहा था, ज्ञान में। वह सहज स्वभाव! वहाँ हमारा अहंकार नहीं था पर यदि आज का यह ज्ञान नहीं रहा होता तो अहंकार से बिल्कुल कुछ भी बाहर नहीं दिखने देता। सबकुछ क्लियर दिखाता। अभी परिणाम चाहे कुछ भी हो तब भी क्लियर दिखाता। अहंकार क्या नहीं कर सकता? अभी तो सब सहज है।

देखने को मिली दादा की देहातीत दशा

हम निरंतर मोशन में रहते हैं, ज़रा भी असर नहीं होता। लोग समझते थे कि वाइफ की मृत्यु हो गई तो क्या से क्या हो गया होगा इन्हें! लेकिन हीराबा का देहांत हो गया था, तब मैं भी साथ ही श्मशान में गया था और लोगों ने आँखों को देखा था लेकिन कुछ दिखाई नहीं दिया न! कुछ भी नहीं दिखाई दिया। रोना भी नहीं दिखाई दिया, हँसना भी नहीं दिखाई दिया। नॉर्मल पोज़िशन (सामान्य स्थिति, सामान्य दशा)। कोई सामने रोते थे, इस शरीर का, प्रकृति का स्वभाव है कि यदि सामने किसी को रोता देखे न, तो आँख में से पानी आता है। लेकिन उसे तो मैं नहीं देखता था और सामने वाले की आँख में से पानी आने से पहले कुछ ऐसा शब्द बोल देता था तो वह रुक जाता था। और वैसे भी हम ज्ञान में ही रहते हैं। एक सेकन्ड भी शरीर में नहीं रहते। अंत में श्मशान जाने तक, श्मशान से वापस आ रहे थे तब भी एक सेकन्ड भी शरीर में नहीं थे, आउट ऑफ बॉडी। तब आपने देखा था न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, मैं था न, दादा के साथ। मैंने देखा था। मैं वही देख रहा था।

दादाश्री : पास में था फिर, उसमें भी यह देहातीत दशा कहाँ देखने को मिलेगी? इन दादा के दर्शन हो जाएँ न, तो कल्याण हो जाएगा! यदि यथार्थ रूप में दर्शन हो जाए न, तो कल्याण हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की देहातीत दशा होती है, ऐसा सब पढ़ा था लेकिन देहातीत दशा कैसी होती है? वह कभी नहीं देखी थी, तब वह देखने को मिली थी।

दादाश्री : वह नहीं देखी थी? वह, उस दिन आपने देखी थी न, वह थी देहातीत दशा!

हमें निरंतर ज्ञान हाज़िर ही रहता है

आपने थोड़ा बहुत देखा था?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। मैं पूरे समय वही मार्क कर रहा था कि दादा का दर्शन कैसा सब देखने को मिल रहा था!

दादाश्री : अंत तक, बाद में उनके भतीजे आए थे, उनके भाई के बेटे। जब वे दो लोग आए, तब उन्हें मुझे देखकर ढीले पड़ते देखा। उससे मैं समझ गया कि अभी सिसकियाँ आने लगेगी और रोएँगे। इसलिए मैंने कहा, 'आप बाहर बैठो।' अतः सिर्फ उन्हें ही बाहर बैठाया था। क्योंकि मुझे परेशानी में डाल देते न! वे बहुत रोते तो फिर थोड़ी बहुत, दो बूँदें गिर जाती मेरी। वे बूँदें गिरे, उसमें हर्ज नहीं था, परंतु वह व्यवहार योग्य नहीं कहा जाता।

प्रश्नकर्ता : नहीं, पर दादा, उस दिन चंद्रकांतभाई के समय...

दादाश्री : ऐसा हुआ था। कि वहाँ पर ऐसा देख लिया था और इतना ज़्यादा उपयोग मैंने नहीं रखा था। उसके बाद यह रखा न! वह तो, एक्ज़ेक्ट रख देना पड़ता है उपयोग। वह उपयोग ज़रा सा हट गया था तो ऐसा हो गया था। यहाँ अंत तक नहीं हुआ। हुआ है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, नहीं हुआ।

दादाश्री : और बिस्तर में था, रसिकभाई बताने आए तब भी कुछ नहीं। मैंने कहा, 'हर्ज नहीं। आप इसका सब इस तरह से करो।'

हम निरंतर ज्ञान में रहते हैं। एक सेन्ट भी यदि वह हो जाए न, तो भी सिसकी हो सकती हैं। निरंतर ज्ञान में, एक समय भी बदलाव नहीं, वर्ना सिसकी हो जाती हैं। अवकाश मिला कि सिसकियाँ आ जाती है।

आज तो बाजे बजाने चाहिए

प्रश्नकर्ता : जो लोग बरामदे में थे न, उनकी आँखों में आँसू आ गए थे।

दादाश्री : हाँ, आँसू थे। अत: जहाँ आँसू दिखाई देते थे न, वहाँ से मुँह फेर लेता था। क्योंकि किसी के भी आँसू देखता हूँ तो मेरी आँख में आँसू आ जाते हैं, परंतु मैं ज्ञानी पुरुष और मुझे तो कंट्रोल में रहना चाहिए। यदि मुझे रोना आता तो फिर सभी रोने लगते। 'हु हु हु' हो जाता सभी जगह। और यह रोने की जगह नहीं है, यह तो आनंद करने की जगह है। मैंने तो कहा, 'बैंड हो तो बैंड बजवाओ', परंतु लोग स्वीकार नहीं करते न!

अभी यदि लोग मुझसे कहते कि बाजे बजाओ, तो मैं बजवाता। पाँच सौ रुपये देकर, कि तू बजा पूरे जोश से कि अच्छा हुआ इतनी उम्र में इस देह में से छूट गए, वर्ना देह में तो कलह करवाते हैं। यह *उपाधि* (परेशानी) कैसे सहन होती उनसे बुढ़ापे में?

उन्होंने कभी भी किसी को गाली नहीं दी, किसी को डांटा नहीं, किसी को कभी भी कुछ नहीं कहा, किसी पर आरोप नहीं लगाया।

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा, ऐसा कुछ नहीं किया।

दादाश्री : किसी के प्रति कुछ खराब दृष्टि नहीं की।

प्रश्नकर्ता : ऐसा प्रेम ही देखने को नहीं मिलता।

दादाश्री : कितनी अच्छी वीतरागता रही! इतना कहकर ये उत्सव मनाते। इसलिए हम बाजे बजवाते। बहुत अच्छा हुआ, इस देह में से छूट गए, कुछ भी दु:ख पड़े बगैर!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आनंद का दिन था। वह तो, यदि यहाँ बैंड होता तो बैंड बजाता। मैं बैंड बजवाता यहाँ। इस देह में से छूटना क्या आसान है? छिहत्तर साल में छूटना आसान है क्या? यह देह ही नहीं छोड़ता। दु:ख दिए बगैर नहीं रहता बुढ़ापा। कुछ भी अड़चन बगैर मुक्त हो गए। मेरे मन में तो ऐसा था कि ऐसे के ऐसे ही यदि गाड़ी चलती रही तो बहुत अच्छा हो जाएगा, और गाड़ी चली। सरल स्वभावी और दूसरी कोई झंझट नहीं।

और हीराबा छिहत्तर साल की थी। अब तो पान बुढ़ा हुआ था और छूटने (झड़ने) लायक हो गया था। इसलिए मैंने तो तुरंत ही सभी से कहा, कि 'आज तो मेरे पास बैंड होता तो मैं बैंड बजवाता', कि ऐसे टूटे-फूटे देह में से आत्मा अच्छी तरह से निकल गया! फिर भी अपने लोग उसे मातम जैसा बना देते हैं।

प्रश्नकर्ता : बेटे का जन्म हुआ तब तो पेडे बाँटे थे परंतु मृत्यु हो गई तब भी बाँटे थे। वह बात उस दिन निकाली थी और आज यह बात निकली कि बैंड-बाजे बजाता।

दादाश्री : मैंने एक-दो लोगों से तुरंत कहा था, कि यदि बैंड होता तो आज बैंड बजाता।

हीराबा से पूछा होता हमने, कि 'हम आपके

जाने के बाद शोक रखें?' तब कहतीं, कि 'नहीं, शांति से रहना।' यह तो, लोगों को दिखाने के लिए ये सब करते हैं लोग।

ममता के परमाणु निकल जाने चाहिए

मैं जब छोटा था दस-बारह साल का, तब हमारे कुटुंब में एक भाई की मृत्यु हो गई थी। वे सभी, उनके सभी भाईयों चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। तो वे किस तरह से चिल्ला रहे थे? सिर पर यहाँ तक ओढ़ा हुआ था, यहाँ तक। ताकि चेहरा न दिखाई दे। आँखें नहीं दिखाई दें? अंदर क्या कर रहे हैं, वे चिल्लाकर रो रहे हैं या रेडिया बजा रहे हैं, हमें पता ही नहीं चलता।

यानी इस तरह चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे और ऐसी आवाज़ निकाली कि मुझे खुली आँखों से रोना आ गया। विषाद रस उत्पन्न हो जाए, ऐसा बोला। और विषाद, तो आँखों में पानी आ गया, तब मैंने जाना कि अभी मैं इतना रोया तो ये कितना रोएँ होंगे? और भीतर था घोटाला।

फिर यह सब देख लिया था। यह सब तो सिर्फ नाटक है।

प्रश्नकर्ता : ये दसवें साल की बात थी फिर अस्सी साल तक आप कितनी बार रोए?

दादाश्री : रोते तो थे, लेकिन कुछ स्टेज पर वापस रोते भी थे और फिर बंद होता गया। वह तो, बा (माँ) की मृत्यु हुई थी तब रोया था, क्योंकि अगर मैं नहीं रोता न, तो अंदर घुटन होती और दु:खी हो जाता। इसलिए जान-बूझकर रोया था।

प्रश्नकर्ता : यानी कि व्यवहार में जो कोई भी रो रहा हो तो उसे रोने देना चाहिए, उसकी घुटन निकल जाती है। प्रकृति जो है, उसे वेन्टिलेशन (दु:ख निकलने की जगह) चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, प्रकृति को वेन्टिलेशन चाहिए, सही कह रहे हैं। वर्ना, सफोकेशन (घुटन) हो जाता है अंदर।

यह तो सब लौकिक है। इसमें सच्चे इंसान रोने लगते हैं बेचारे। और इंसान को रोना, आना चाहिए। क्योंकि, वह ममता का परिणाम है। यदि रोना नहीं आया तो भीतर घबराहट हो जाएगी। वे परमाणु निकल ही जाने चाहिए। जितनी उसके साथ ममता है न, उतने परमाणु निकल ही जाने चाहिए।

शादी के समय आया हुआ विचार सच हुआ

हमें तो शादी के समय, शादी के मंडप में विचार आया था कि, 'ये शादी तो कर रहे हैं, परंतु दोनों में से एक को विधुर होना पड़ेगा!' वह कल सच हुआ। कल जो हुआ वह देखा न! अब कोई पूछे, कि 'दादा?' तब कहें, 'विधुर ही है, विवाहित थोड़े न कहे जाएँगे?' जब तक हीराबा जीवित थीं तब तक विवाहित और चली गई तो विधुर। फिर वे साहित्यकार ढूँढ निकालते हैं, विधुर और बिधुर, वे सभी शब्द। लेकिन देशी भाषा वह सही है, विधुर और विवाहित। यह ग्रामीण भाषा मोक्ष में ले जाएगी। विधुर-विवाहित का ज्ञान होगा तो मोक्ष में जाएगा, भाई। 'ये विधुर आए', इसका क्या अर्थ है? विधुर या विवाहित? तब कहते हैं, 'भई, विवाहित है। और कोई विधुर हो तो विधुर भी कहते हैं।' किस आधार पर विधुर और विवाहित, वह सब तुम्हें समझ जाना है। यह संसार बसाया, उसे विवाहित कहते हैं और संसार का पहिया टूटा कि विधुर। बैल गाड़ी का एक पहिया टूटा तो फिर भटक गई। एक पहिया टूटा उससे तो पूरी बैल गाड़ी ही बेकार हो गई। उस बैल गाड़ी में तो दूसरा पहिया लगाते हैं लेकिन इसमें क्या करें?

और 'हम' विवाहित नहीं थे तो फिर 'हमें' कहाँ विधुर होना था? देह को विधुर होना था, जो विवाहित था उसे। 'हमने' कहाँ पगड़ी पहनी थी और सब पहना था?

संयोग का अंत में वियोग हो गया

ये तो अलग हो गए, यहाँ से। मैं अमरिका जाता हूँ, उसी तरह ये गए हैं। 1923 में शादी हुई थी और 1986 में अलग हो गए। देखो, संयोग वियोगी स्वभाव का है न!

खुद संयोगी तो चले गए हैं। यह तो सारा संयोग संबंध है न! कोई दस साल रहता है, कोई बीस साल, कोई पाँच मिनट रहता है, कोई दस मिनट रहता है। वियोग होता ही रहता है अपने आप।

ऐसे संयोग संबंध कहाँ तक पहुँचे हैं, वह पता था। उन्नीसवें साल में हमारे फादर के संयोग पूरे हो गए। उनतीस-तीस साल में ब्रदर का संयोग पूरा हो गया। फिर झवेरबा का अड़तालिसवें साल में और हीराबा का तो अठहत्तरवें साल में, 198 6 में संयोग पूरा हुआ।

व्यवहार से गए, परंतु हैं तो हमारे साथ

इसमें रोने जैसी बात ही कहाँ है? यह तो मृत्यु कहाँ हुई है? वह तो, लोगों को लगता हैं कि हीराबा गए। मूल वस्तु तो हैं ही न!

प्रश्नकर्ता : हैं ही।

दादाश्री : हमेशा के हैं न?

प्रश्नकर्ता : हमेशा के।

दादाश्री : विधि, जो हमेशा के हैं उनकी करता था या हीराबा की करता था?

प्रश्नकर्ता : जो हमेशा के हैं उनकी।

दादाश्री : हाँ, जलने की चीज़ जल गई, नहीं जलने वाली रह गई। जो हमेशा के हैं, वे तो गए ही नहीं न! वे तो हमारे साथ ही हैं। व्यवहार से कह सकते हैं कि वे गए। हमें तो हीराबा वैसे के वैसे ही लगते रहते हैं, अभी भी। जैसे थे वैसे के वैसे लगते रहते हैं। व्यवहार कहता है, 'लो, तो आप कहते हैं वैसे के वैसे हैं तो दिखाइए।' मैंने कहा, 'भाई, वे तुझे नहीं दिखाई देंगे, वे मुझे दिखाई देते हैं।'

मरना-जीना मेरे ज्ञान में नहीं है

हम जीवित ही हैं, मरने वाले थे ही नहीं। परंतु यह तो अब पता चला न! पहले पता नहीं था न! अब तो हम जानते हैं कि हम नहीं मरेंगे, मरने वाला भाग तो यह है। जगत् ऐसा समझता है कि मृत्यु हो गई। जैसी दृष्टि है न, वैसा दिखाई देता है। जो खुद को मर जाऊँगा, ऐसा समझता है, वह दूसरों को मर गए ही समझेगा।

ज्ञानी की दृष्टि में जो समझदार है, वह सारा विषाद निकाल देता है और जो समझदार नहीं है, वह रहने देता है। दुनिया की दृष्टि में जो समझदार है, वह विषाद रहने देता है और जो समझदार नहीं है, वह विषाद निकाल देता है। ये दो दृष्टियाँ हैं।

कोई भी चीज़ दुनिया में होती है उसमें, 'यह क्या है?', ऐसा उसके साथ ही साथ वापस दूसरा (ज्ञान) होता है हमारा। यह तो व्यवहार का हुआ, लेकिन तब हमें निश्चय का हो जाता है, कि 'वास्तव में ऐसा है।' अपने आप ही हो जाता है, स्वभाविक ही।

कोई भी व्यक्ति मरता है तो मुझ पर उसका असर नहीं होता। क्योंकि मरना-जीना मेरे ज्ञान में नहीं है। लोगों के ज्ञान में है, लेकिन मेरे ज्ञान में वह मरता-जीता नहीं है। फिर भी लोग पूछते हैं

तब मैं कहता हूँ, 'हाँ, भाई की मृत्य हो गई। बहुत गलत हुआ।' मैं तो व्यवहार में बोलता हूँ। व्यवहार में अविनय नहीं रखता। विनयपूर्वक बोलता हूँ, कि 'बहुत गलत हुआ। ऐसा नहीं होना चाहिए।' वर्ना, मेरे ज्ञान में तो कोई मरता ही नहीं है।

निर्विकल्पी बनने की अद्‌भुत चाबी

हम तो ऐसा इस देह को भी कह देते हैं कि, 'तुझे जब छूटना हो तब छूट जाना, मेरी इच्छा नहीं है।' क्योंकि नियम इतने अच्छे हैं कि नियम किसी को भी नहीं छोड़ता है, ऐसे सारे नियम हैं। यहाँ पर कहीं किसी को दया आए ऐसा नहीं है। इसलिए बेकार ही बिना काम के दया किसलिए माँगते हो? 'हे भगवान! बचाना, बचाना!' किस तरह बचाएँगे वे? भगवान खुद ही नहीं बचे थे न! यहाँ जन्म लिया न, वे सभी नहीं बचे थे न! अरे, कृष्ण भगवान तो पैर चढ़ाकर ऐसे सो रहे थे, तो उस पैर को शिकारी ने देखा, उसे ऐसा लगा कि यह कोई हिरण-विरण वगैरह है, तो उसने तीर मारा!

कर्म किसी को भी नहीं छोड़ते। क्योंकि यह स्वरूप अपना नहीं है। अपने स्वरूप में कोई नाम भी नहीं लेगा। यदि 'आप' शुद्धात्मा हो, तो कोई नाम लेने वाला नहीं है। परमात्मा ही हो! परंतु यहाँ किसी का ससुर बनना हो तो मुश्किल है!

प्रश्नकर्ता : हम देह से सिर्फ, 'तुझे जब मरना हो तब तू मरना', इतना कहें तो चलेगा?

दादाश्री : सिर्फ, 'मरना हो तब मर जाना' ऐसा कहने का क्या अर्थ होता है, कि यह एकपक्षी हो जाता है। यानी इससे तिरस्कार उत्पन्न न हो इसलिए साथ में कहते हैं, कि 'हमारी इच्छा नहीं है।' इस शरीर से हम क्या कहते हैं, कि 'तुझे जब जाना हो तब तू जाना, मेरी इच्छा नहीं है।' क्योंकि 'मुझे तो अभी भी लोगों का कल्याण कैसे हो', इतनी ही मेरी इच्छा है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहने से क्या फायदा होता है?

दादाश्री : निर्विकल्प बनाता है।

प्रश्नकर्ता : किसे, हमें?

दादाश्री : हमें। यह तो हमारी खोज़ है! एक-एक चाबी, हमारी खोज़ है यह सब!

टेम्परेरी को जानने वाला 'मैं' परमानेन्ट

मृत्यु तो, ऐसा है न, यह क़मीज़ सिलवाई अर्थात् क़मीज़ का जन्म हुआ न, और जन्म हुआ इसलिए मृत्यु हुए बगैर रहेगी ही नहीं! किसी भी चीज़ का जन्म होता है तो उसकी मृत्यु अवश्य होती है। और आत्मा अजन्मा-अमर है, उसकी मृत्यु ही नहीं होती। यानी जितनी चीज़ें जन्म लेती हैं, उनकी मृत्यु अवश्य होती है और मृत्यु है तो जन्म होगा। अर्थात् जन्म के साथ मृत्यु जोइन्ट हुई है। जन्म है वहाँ मृत्यु अवश्य है ही!

इस देह का जन्म होना न, वह एक संयोग है, उसका वियोग हुए बगैर रहेगा ही नहीं न! संयोग हमेशा वियोगी स्वभाव के ही होते हैं। जब हम स्कूल में पढ़ने गए थे, तब शुरुआत की थी या नहीं? बिगिनिंग? फिर एन्ड आया या नहीं आया? हर एक चीज़ बिगिनिंग और एन्ड वाली ही होती है। यहाँ पर इन सभी चीज़ों का बिगिनिंग और एन्ड होता है। नहीं समझ में आया तुझे?

प्रश्नकर्ता : समझ में आया न!

दादाश्री : ये सभी चीज़ें बिगिनिंग-एन्ड वाली, परंतु बिगिनिंग और एन्ड को जो जानता है, वह जानने वाला कौन है?

सभी चीज़ें बिगिनिंग व एन्ड वाली हैं, वे

टेम्परेरी (अस्थायी) चीज़ें हैं। जिसका बिगिनिंग होता है, उसका एन्ड होता है। बिगिनिंग हो उसका एन्ड होता ही है, अवश्य। वे सभी टेम्परेरी चीजें हैं, लेकिन टेम्परेरी को जानने वाला कौन है? तू परमानेन्ट है। क्योंकि तू इन चीज़ों को 'टेम्परेरी' कहता है, इसलिए तू 'परमानेन्ट' है।

ये जन्म-मृत्यु आत्मा के नहीं हैं। आत्मा परमानेन्ट वस्तु है। ये जन्म-मृत्यु इगोइज़म के हैं। इगोइज़म जन्म पाता है और इगोइज़म मरता है। वास्तव में आत्मा खुद मरता ही नहीं। अहंकार ही जन्म लेता है और अहंकार ही मरता है।

भगवान की दृष्टि में कोई नहीं मरता

कभी न कभी सॉल्यूशन तो लाना पड़ेगा न? जीवन-मृत्यु का सॉल्यूशन (हल) नहीं लाना पड़ेगा? वास्तव में खुद मरता भी नहीं है और वास्तव में जीता भी नहीं है। यह तो मान्यता में ही भूल है कि स्वयं खुद को जीव मान बैठा है। खुद का स्वरूप शिव है। खुद शिव है, लेकिन यह खुद की समझ में नहीं आता है और खुद को जीव स्वरूप मान बैठा है!

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसा हर एक व्यक्ति को समझ में आ गया होता तब तो यह दुनिया चलती ही नहीं न!

दादाश्री : हाँ, चलती ही नहीं न! लेकिन अभी हर एक व्यक्ति को समझ में आ जाए, ऐसा है भी नहीं! यह तो सब पज़ल (पहेली) है। अत्यंत गुह्य, अत्यंत गुह्यतम। इस गुह्यतम के कारण ही तो यह सब ऐसा पोलम्पोल जगत् चलता रहता है।

ऐसा है न, भगवान की दृष्टि में इस संसार में क्या चल रहा है? तो कहते हैं, उनकी दृष्टि में तो कोई मरता ही नहीं है। भगवान की जो दृष्टि है, वह दृष्टि यदि आपको प्राप्त हो जाए, एक दिन के लिए दें वे आपको, तो यहाँ चाहे जितने लोग मर जाएँ, फिर भी आपको असर नहीं होगा। क्योंकि भगवान की दृष्टि में कोई मरता ही नहीं है।

मृत्यु के क्षण, शुद्धात्मा की समाधि

आपको तो अमरपद दे दिया है। मरेगा तो शरीर मरेगा, हम तो अमर ही हैं।

अपने महात्मा तो 'पुरुष' (आत्मा) बन चुके हैं। यदि सांस न चले तो भीतर घुटन होती है तो फिर खुद की गुफा में बैठ जाते हैं कि 'चलो, हम अपनी सेफसाइड वाली जगह पर।' यानी खुद अमरपद के भान वाले हैं, ये!

यहाँ पर मृत्यु का समय आने पर भी अगर भय न लगे तो समझना कि अब मोक्ष के लिए 'वीज़ा' मिल गया! भय नहीं लगना चाहिए। किसी भी प्रकार से भय नहीं लगना चाहिए। क्योंकि जहाँ मालिक ही आप हो, वहाँ भय कैसा? मालिक हो, दस्तावेज है, टाइटल है, सभी कुछ आपके पास है।

हमारा यह ज्ञान ही ऐसा है कि जब मृत्यु का समय आता है तब 'खुद' पूर्ण रूप से प्रकट हो ही जाता है। उस समय 'खुद की' गुफा में ही घुस जाता है। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सब चुप हो जाते हैं! जब बम गिरने वाला होता है तब कैसे चुप हो जाते हैं! उसी प्रकार ये सभी चुप हो जाते हैं। जब अंतिम समय आता है (मृत्यु का समय) तब 'खुद' का सारा भाग सिकुड़ लेता है और खुद समाधि में ही रहता है। 'शुद्धात्मा' के *लक्ष* सहित ही शरीर छूटता है। तब मृत्यु के समय समाधि हो जाती है। अपने सम्यक् दृष्टि वाले महात्माओं का समाधि मरण होता है।

- जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में सत्संग कार्यक्रम

अहमदाबाद

17 दिसम्बर (शनि) रात 7-30 से 10-30 - **सत्संग**

18 दिसम्बर (रवि) शाम 5-30 से 9 - **ज्ञानविधि**

19 दिसम्बर (सोम) रात 7-30 से 10-30 - **आप्तपुत्र सत्संग**

स्थल : ओपन ग्राउंड, दिव्यपथ स्कूल के सामने, विवेकानंद सर्कल के पास, नारणपुरा, अहमदाबाद. **संपर्क :** 9974720945

अडालज

24 से 31 दिसम्बर - पारायण (आप्तवाणी-14 भाग-3) - वाचन, सत्संग तथा प्रश्नोत्तरी

नोट : आप्तवाणी-14 भाग-3 गुजराती किताब के पेज नंबर 141 से वाचन होगा।

1 जनवरी - श्री सीमंधर स्वामी की छोटी प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा

2 जनवरी - परम पूज्य दादाश्री की पुण्यतिथि पर विशेष कार्यक्रम

मुंबई

14 जनवरी (शनि) - **सत्संग**

15 जनवरी (रवि) - **ज्ञानविधि**

नोट : समय और स्थल की जानकारी अगले अंक में।

धांगध्रा त्रिमंदिर प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सांनिध्य में... दिनांक 24 से 26 फरवरी 2023

24 फरवरी (शुक्र) - **सत्संग** (स्थानिक महात्माओं और नए मुमुक्षुओं के लिए)

25 फरवरी (शनि) - **ज्ञानविधि**

26 फरवरी (रवि) - **प्राणप्रतिष्ठा** तथा **प्रक्षाल-पूजन-दर्शन-आरती**

विशेष सूचना : प्राणप्रतिष्ठा कार्यक्रम केवल एक दिन का है, इसलिए रात्रि आवास की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाएगी। जो महात्मा-मुमुक्षु उसी दिन सीधे ही महोत्सव स्थल पर पहुँचेंगे, उनके लिए बाथरूम-टोइलेट की सुविधा स्थल पर रहेगी।

'दादावाणी' के वार्षिक/5 साल के सदस्यों के लिए सूचना

आपको आपकी दादावाणी पत्रिका की सदस्यता समाप्त हो रही है उसका पता कैसे चलेगा? आपको मिली इस महीने की दादावाणी पत्रिका के कवर पर लगे हुए लेबल पर ग्राहक नं. के अंतिम छः अंक की जांच करें। DGFT555/**08-28** यानी आपकी सदस्यता अगस्त-2028 को समाप्त हो रही है। दादावाणी पत्रिका रिन्यु कराने के लिए पेज नं. 3 पर दर्शाये गए मूल्य अनुसार मनी आर्डर या डिमान्ड ड्राफ्ट (पेयेबल अहमदाबाद) त्रिमंदिर अडालज के पते पर भेजें। साथ ही अपना नाम, पूरा पता (पिनकोड के साथ), फोन-मोबाइल नंबर, इ-मेल आदि आवश्यक जानकारी दें।

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820 **यु.एस.ए.-केनेडा:** +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

अडालज : नवरात्रि गरबा : ता. 26 सितम्बर से 4 अक्तूबर 2022

अडालज : 'निरांत-2' का भूमि पूजन : ता. 1 अक्तूबर 2022

सेक्टर - 4
निरांत-2
सेक्टर - 3

नवम्बर 2022
वर्ष-18 अंक-1
अखंड क्रमांक - 205

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
LPWP Licence No. PMG/NG/036/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

ज्ञानी बहुत विवेकी होते हैं

'ज्ञानी' बावले नहीं होते, 'ज्ञानी' बहुत समझदार होते हैं। मन में सबकुछ होता है कि 'भला हुआ छूटा जंजाल' पर बाहर क्या कहते हैं? अरेरे, बहुत बुरा हुआ। यह तो 'मैं अकेला अब क्या करूँगा' ऐसा भी कहते हैं। नाटक करते हैं! यह जगत् तो स्वयं नाटक ही है। इसलिए अंदर जानो कि 'भला हुआ छूटा जंजाल' पर बाहर तो विवेक में रहना चाहिए। 'भला हुआ छूटा जंजाल, सुख से भजेंगे श्री गोपाल' ऐसा नहीं बोलते। ऐसा अविवेक तो कोई बाहर वाला भी नहीं करता। दुश्मन हो, फिर भी विवेक से बैठता है, मुँह शोक वाला करके बैठता है! हमें शोक या और कुछ नहीं होता, फिर भी बाथरुम में जाकर पानी लगाकर, आकर आराम से बैठते हैं। यह अभिनय है। दी वर्ल्ड इज़ दी ड्रामा इटसेल्फ, (संसार स्वयं एक नाटक है) आपको नाटक ही करना है केवल, अभिनय ही करना है, लेकिन अभिनय 'सिन्सियरली' करना है।

– दादाश्री

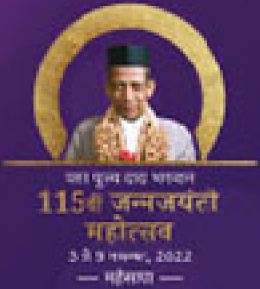

दुनिया

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.